एस.रामा.कृष्णा

बनाम

एस.रामी. रैडडी (डी) जरिए विधिक प्रतिनिधि व अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 755/2008)

29 अप्रैल,2008

(एस.बी.सिन्हा और लोकेश्वर सिंह पांटा, जेजे.)

दंड प्रक्रिया संहिता 1973, एसएस 256 और 378-

चैक अनादरण के आपराधिक कार्यवाही- परिवादी की कार्यवाही में लंबे समय तक अनुपस्थिति के मध्य नजर मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करना-उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति अपास्त की-अपील में अभिनिर्धारित किया गयाः मजिस्ट्रेट ने अपने विवेकाधिकार अधिकारिता का सही रूप से उपयोग करते हुए अभियुक्त को दोषमुक्त किया-उच्च न्यायालय का धारा 378 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए हस्तक्षेप करना सही नहीं था-त्वरित विचारण अभियुक्त का मूलभूत अधिकार है-विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश और सीआरपीसी के प्रावधानों का अर्थ संवैधानिक योजना एवं विधिक के सिद्धांतों के संदर्भ में ही लिया जाए- विधियों का निर्वचन- भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 21-प्रक्राम्य लिखत अधिनियम,1881-धारा 138 सपठित धारा 142

**प्रक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 सपठित धारा 142 के अंतर्गत प्रत्यर्थी के परिवाद पर कार्यवाही शुरू हुई थी। मूल परिवादी की मृत्यु के पश्चात यद्यपि प्रतिस्थापन का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत हुआ था, उक्त प्रार्थना पत्र पर कोई आदेश पारित नहीं**

हुआ था। परिवादी के विधिक वारिसान प्रकरण की सुनवाई की तारीखों पर लंबे समय तक अनुपस्थित रहे, मजिस्ट्रेट ने अपीलांट/अभियुक्त को धारा 256 सीआरपीसी के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए दोषमुक्त किया। उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति का आदेश यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त किया कि न्यायालय को किसी प्रकरण को तकनीकी आधारों पर निर्णित नहीं करना चाहिए था, फिर भी उच्च न्यायालय ने पाया कि परिवादी के विधिक वारिसान प्रकरण चलाए जाने में रूचि रखते थे। इस प्रकार वर्तमान अपील प्रस्तुत हुई।

अपील स्वीकार।

अभिनिर्धारित 1.1 धारा 256(1) सीआरपीसी के प्रावधान मजिस्ट्रेट को प्राधिकार देते हैं कि वह अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है जब तक कि वह यह न समझता हो कि कुछ कारणों से प्रकरण की सुनवाई को स्थगित किया जावे। यदि आपवादिक प्रक्रम अपनाया जाता है तो उसका उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। हालांकि, मजिस्ट्रेट को दिए गए विवेक का प्रयोग बहुत सावधानी व सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। उक्त उद्देश्य के लिए परिवादी का आचरण अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है वह किसी मामले को अनिश्चितकाल तक लंबित रहने की अनुमति नहीं दे सकते। यह मामला पांच साल से अधिक समय तक लंबित रहा। प्रत्यर्थी के लिए यह अनिवार्य था कि वे प्रतिस्थापन के लिए प्रस्तुत किए गए अपने आवेदन पर दबाव डालते। उन्होंने अपने गवाहों को उपस्थित नहीं रखा। मामला सुनवाई के लिए फिक्स किया गया था। (पैरा 8 व 10) (1214-ए-बी;1240-एफ-जी)

1.2 अपीलार्थी लंबे समय तक न्यायालय में उपस्थित रहा, केवल कुछ तारीखों को छोड़कर जब व अनुपस्थित रहा या अन्यथा उसके अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया था। मूल परिवादी की मृत्यु के पश्चात वह कम से कम 20

मौकों पर अदालत में उपस्थित हुआ। यदि उपरोक्त परिस्थिति में मजिस्ट्रेट ने अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया होता तो सामान्यतः इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। (पैरा 10) (1241-सी-डी)

2.1 उच्च न्यायालय सीआरपीसी की धारा 378 उपधारा 4 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था। प्रत्यर्थीगण द्वारा की गई अपील दोषमुक्ति के निर्णय के विरूद्ध थी। इसलिए उच्च न्यायालय को मामले में अपनी सीमित भूमिका को ध्यान में रखते हुए अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए। उच्च न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहा कि वह दोषमुक्ति के आदेश की सुनवाई कर रहा था और इस प्रकार विधि के जिस सिद्धांत को लागू करने की आवश्यकता थी, वह यह था कि, यदि दृष्टिकोण संभव है, तो दोषमुक्ति के निर्णय में सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। (पैरा 11 व 12) (1241-ई,जी-एच)

2.2 उच्च न्यायालय स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि प्रत्यर्थीगण की मामले को चलाने में दिलचस्पी नहीं थी। इसके बावजूद, उसने अपील को स्वीकार किया, और यह राय दी कि पक्षकारों के बीच के किसी भी मामले का निर्णय तकनीकी की बजाए मैरिट पर आधारित होना चाहिए। सिविल मामले व आपराधिक मामले के मध्य एक अंतर मौजूद है। त्वरित सुनवाई का अधिकार अभियुक्त का मौलिक अधिकार है। विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा पारित आदेशों और दं.प्र.सं. के प्रावधानों को संवैधानिक योजना और विधि के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए समझना चाहिए। (पैरा 12) (1214-एफ;1242-ए-बी)

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्या 755/2008

आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय हैदराबाद के आपराधिक अपील संख्या 1149/2006 के आदेश दिनांक 30.08.2006 से

गुंटूर प्रभाकर अपीलार्थी की ओर से।

भारती रैड्डी और टी.वी. रत्नम प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **एस.बी.सिन्हा, जे.** द्वारा दिया गया।

1. अनुमति प्रदान

2. अपीलार्थी ने पांच लाख रूपए (5,00,000) राशि के दो चैक मूल परिवादी अर्थात एस रामी रैड्डी (मृतक) के पक्ष में 09.01.2001 या 10.01.2001 को या उसके आसपास जारी किए।

उक्त चैक क्लेक्शन के लिए बैंक में दिनांक 25.02.2001 को या उसके आसपास जमा करवाए गए थे। जो अनादृत हुए थे।

रामी रैड्डी ने अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, कुरनूल के न्यायालय में दिनांक 06.06.2001 को धारा 138 सपठित धारा 142 प्रक्राम्य लिखत अधिनियम 1888 (संक्षेप में ''अधिनियम'') के अंतर्गत प्रस्तुत की जिसे सी.सी. नम्बर 368/2001 के रूप में पंजीकृत किया गया था। रामी रेड्डी का दिनांक 28.10.2003 को देहांत हो गया। प्रत्यर्थीगण ने एक प्रार्थना पत्र उनके नाम रामी रैड्डी के नाम के स्थान पर प्रतिस्थापित करने के लिए दिनांक 22.12.2003 को प्रस्तुत किया। अपीलार्थी ने इस पर आपत्ति दायर की। उक्त आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं हुआ था। परिवादी के अधिवक्ता, रामी रैड्डी के प्रस्तावित वारिसान की ओर से उपस्थित होकर उनका प्रतिनिधित्व करना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रतीत होता है कि 18.04.2005 से 23.01.2006 को या उसके आसपास अर्थात 14 तारीखों पर परिवादी का प्रतिनिधित्व किसी ने नहीं किया।

3. 23.01.2006 को यह देखते हुए कि प्रत्यर्थी लंबे समय से उपस्थित नहीं हो रहे हैं विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 256 सीआरपीसी के द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार का

प्रयोग करते हुए अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया। आदेश दिनांक 23.01.2006 की वैधता को प्रश्नगत करते हुए एक अपील आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी।

उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित दोषमुक्ति के निर्णय को यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त कियाः

> ''निचले न्यायालय द्वारा पारित डोकेट आदेश के अवलोकन के साथ साथ निचले न्यायालय द्वारा संधारित की गई डायरी के सार से प्रकट होता है कि केवल अपीलार्थी की अनुपस्थिति के कारण प्रकरण में कई बार स्थगन हुए और अंततः 23.01.2006 को विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित किया। इससे यह स्पष्ट है कि अपीलार्थीगण की प्रकरण को चलाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। हालांकि इस न्यायालय ने लगातार यह मत रखा है कि पक्षकारों के मध्य के किसी भी मामले काे तकनीकीपन की बजाए मैरिट पर निर्णित किया जाए, इस न्यायालय का मत है कि अपालार्थी को एक और अवसर प्रकरण को चलाने का दिया जा सकता है।''

इस प्रकार अपीलार्थी हमारे सामने है।

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री गुंटूर प्रभाकर उपस्थित होकर प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय को पारित करने में उच्च न्यायालय ने स्पष्ट त्रुटि की है क्योंकि वह इस पर विचार करने में विफल रहे हैं कि परिवादी भी लंबे समय तक अनुपस्थित रहा था, विद्वान मजिस्ट्रेट के द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करने का कोई भी औचित्य नहीं था।

5. प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता उपस्थित। हालांकि उन्होंने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. स्वीकृत रूप से प्रत्यर्थीगण ने मूल परिवादी के स्थान पर स्वयं को प्रतिस्थापित करने के प्रार्थना  पत्र पर गंभीरता से दबाव नहीं डाला।

7. दं.प्र.सं. की धारा 256 मजिसट्रेट को परिवादी मृत्यु और  उसकी अनुपस्थिति पर दोषमुक्ति का आदेश पारित करने का प्राधिकार देती है।

परिवाद याचिका वर्ष 2001 में प्रस्तुत की गई थी। रामी रैड्डी की 2003 में मृत्यु हो गई। बड़ी संख्या में प्रकरण की सुनवाई के लिए तारीखें तय की गई। हालांकि कुछ तारीखों पर प्रत्यर्थी या तो व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित हुआ या अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ था। लेकिन यहां पहले देखा गया है कि लगभग लगातार 15 तारीखें जो सुनवाई के लिए तय की गई वे अनुपस्थित रहे।

धारा 256(1) सीआरपीसी के तत्व हैः (i) परिवादी पर सम्मन जारी कर दिया गया हो,(ii) मजिस्ट्रेट की यह राय हो कि कुछ कारणों से यह उचित नहीं है कि प्रकरण की सुनवाई को किसी अन्य तारीख को स्थगित किया जाए; और (iii) धारा 256 सीआरपीसी के अंतर्गत आदेश जिस तारीख को पारित किया गया था वह तारीख या तो अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत हो या ऐसा अन्य किसी दिन हो जो कि प्रकरण की सुनवाई के लिए स्थगित की जा चुकी है।

यह ऐसा मामला नहीं है जहां अधिनियम की धारा 256 उपधारा (1) का परंतुक लागू था।

8. प्रकरण पांच साल से अधिक समय तक लंबित रहा था। यह प्रत्यर्थी के लिए अनिवार्य था कि वह प्रतिस्थापन के अपने आवेदन पर दबाव डालता। उन्होंने

अपने गवाहों की उपस्थिति दर्ज नहीं की। मामला सुनवाई के लिए फिक्स किया गया था।

9. विद्वान मजिस्ट्रेट धारा 256 उपधारा (1) के अंतर्गत विस्तृत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। यद्यपि दोषमुक्ति का आदेश अत्यधिक महत्व का है, इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने विवेकाधिकार का उचित रूप से प्रयोग किया।

10. धारा 256(1) के प्रावधान अभियुक्त को दोषमुक्त करने का मजिस्ट्रेट को प्राधिकार देते हैं जब तक कि किसी कारण से वह प्रकरण की सुनवाई को स्थगित करना उचित ना समझता हो। यदि कोई आपवादिक प्रक्रम अपनाया जाता है तो उसका उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। हालांकि विद्वान मजिस्ट्रेट को दिया गया विवेकाधिकार अत्यधिक सावधानी और सतर्कता से प्रयुक्त करना चाहिए। उक्त उद्देश्य के लिए परिवादी का आचरण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वह किसी मामले को अनिश्चितकाल तक लंबित रहने की अनुमति नहीं दे सकता। अपीलार्थी लंबे समय तक न्यायालय में उपस्थित हो रहा था, कुछ तारीखों को छोड़कर जब वह उपस्थित रहा या उसका प्रतिनिधित्व अधिवक्ता द्वारा किया गया था।

उसे कोर्ट में उपस्थित रहना था। वह मूल परिवादी की मृत्यु के पश्चात कम से कम 20 अवसरों पर न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ। यदि उपरोक्त परिस्थिति में विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का उपयोग किया, हमारी राय में सामान्यतः इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

11. उच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 378 उपधारा (4) के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया। प्रत्यर्थीगण के द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय के विरूद्ध

अपील प्रस्तुत की गई थी। इस प्रकार उच्च न्यायालय को सिमित भूमिका निभाने के मत को ध्यान में रखते हुए प्रकरण में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए था।

12. उच्च न्यायायल स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि प्रत्यर्थीगण प्रकरण को चलाने में कोई दिलचस्पी नहीं रखते थे, इसके बावजूद इसने यह राय देते हुए अपील को स्वीकार किया कि पक्षकारों के मध्य के किसी मामले का निपटारा तकनीकीपन की बजाए मैरिट के आधार पर किया जाना चाहिए। विधि का उक्त कथन किस पर आधारित था यह स्पष्ट नहीं है। कोई भी पूर्व निर्णय का हवाला नहीं था; कोई कारण नहीं बताया गया।

उच्च न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहा कि वह बरी के आदेश की सुनवाई कर रहा है। इस प्रकार विधि के जिस सिद्धांत को लागू करने की आवश्यकता थी वह यह था कि यदि दो दृष्टिकोण संभव है तो दोषमुक्ति के निर्णय में सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं किया जाए। सिविल मामले व दांडिक मामले के मध्य अंतर मौजूद है। त्वरित सुनवाई अभियुक्त का मूलभूत अधिकार है। विधि के सक्षम न्यायालय के द्वारा आदेश पारित करते समय दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का अर्थ लगाते समय संवैधानिक योजना और विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए।

13. इस प्रकार हमारी राय में उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय को पारित करने में स्वयं को गलत निर्देशित किया।

इसे कायम नहीं रखा जा सकता। हम तदनुसार उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं। अपील स्वीकार की जाती है। अपील की अनुमति दी गई।

के.के.टी. अपील स्वीकार की गई।

[यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **मोहम्मद आसिफ अंसारी (आर.जे.एस.)** द्वारा किया गया है।]

**अस्वीकरण** : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।